Anusandhanvallari
Vol 2026, No.1
April 2026
ISSN 2229-3388

ओमप्रकाश वाल्मीकि के दलित साहित्य में सामाजिक विमर्श का अध्ययन

अपनेश कुमार (शोध छात्र)

डा0 धनेश कुमार मीना (शोध निर्देशक)

विशय हिन्दी कला विभाग, फैक्लटी ऑफ मानविकी मंगलायतन विश्वविद्यालय, बेसवां, अलीगढ़

सारांश, भारतीय वर्ण–व्यवस्था के स्वरूप को ही हम देखें तो ऐसा प्रतीत होता कि यह कर्मों के ही आधार पर सामाजिक सुरक्षा और क्रियात्मकता को ध्यान में रखकर बनायी गई थी। इसमें मनुष्य का कर्म प्रधान था, जाति प्रधान नहीं थी। लेकिन कालांतर में इसने जन्मना श्रेष्ठता का रूप ले लिया। सो उसके चलते ऊँच–नीच का में चलता रहा कि परस्पर घृणा, छुआछूत, ऊँच–नीच के चलते शोषण का भाव और अधिक उद्ग्र होता गया। जिसके चलते ढेर सारी जातियाँ, उपजातियाँ हाशिए पर डाल दी गयीं। आर्थिक दृष्टि से ये विपन्न तो थी ही, सामाजिक स्तर पर भी इन्हें न्याय नहीं मिला। असमानता का जहर इनके प्रति बढ़ता ही रहा। बड़ी ही हिकारत और घृणा की दृष्टि से देखी जाने वाली ये जातियाँ निरन्तर दीनहीन और अशक्त होती गयीं। लेकिन आजादी मिलने के बाद इनमें परिवर्तन का स्वर सुनाई देने लगा है। संविधान तो इनके साथ न्याय करता ही है साथ ही सवों में भी इस दिशा में परिवर्तन के भाव दिखाई देने लगे हैं। वे लोग भी इतिहासगत भूलों को समझने लगे हैं। जो भारत की सामाजिक एकता की दृष्टि से बहुत जरूरी है। इस परिवर्तन और न्यायप्राप्ति के संघर्ष में यदि दलित और सवर्ण लेखकों का योगदान नहीं रहता तो शायद परिणाम इतना जल्दी, इतना सुखद और अनुकूल नहीं दिखायी देता। कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, और अपने जीवन–संघर्षों के माध्यम से दलित रचनाकारों ने इस दिशा में अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। बल्कि एक तरह से चुनौति भी दी है ताकि सवर्ण कहे जाने वाली जातियाँ अपने कर्मों व विचारों में परिवर्तन करें।

मुख्य शब्द, दलित विमर्श, दलित–लेखन, दलित चेतना, कविता, कहानी आदि।

प्रस्तावना, आज हिन्दी दलित साहित्य में दलित विमर्श, दलित–लेखन, दलित चेतना, उभार और उत्थान से सम्बन्धित बहसें निरन्तर जारी हैं। इस विमर्श में और सच कहें तो इस तरह की सर्जनात्मक सोच में, चिंतन दृष्टि में क्रोध, गुस्सा, खीज, आक्रोश, बदला, प्रतिकार और उबाल जैसा भाव कुछ ज्यादा ही उग्रता के साथ व्यक्त हुआ है। जो तर्कसंगत और जायज भी लगता है। क्योंकि वह भोक्ता और अनुभवकर्ता है। शोषण का शिकार है। इसलिए उसकी वेदना उसका भोगा हुआ सच भला कैसे दबा रह सकता है। उसका जीवन का भोगा हुआ एक–एक क्षणय उसका भोगा हुआ अतीत उसके आसपास का वर्तमान तो उसकी रचना में स्थान पायेगा ही। लकिन अब सवाल यह उठता है कि दलित साहित्यकार अपनी इस पीड़ा का चित्रण साहित्य में किस तरह करे? क्या वह अपना भोगा हुआ सच आक्रोशित और घृणात्मक रूप में ही व्यक्त करे? या फिर याचना के रूप में? या शोषकों को ललकार कर अपना हक पाने वाले स्वर में? कैसे उसे व्यक्त करे? शैली उसकी कैसी हो? अभिव्यक्ति का तरीका कैसा हो? मैंने जानबूझकर इस सवाल को यहाँ उठाया है। क्योंकि सारे दलित लेखक और विमर्शकार इन प्रश्नों से जूझते है। और अपने–अपने ढंग से उत्तर भी देते हैं। बहुत कम ऐसे दलित–लेखक होंगे जिनकी सर्जनात्मकता में आग नहीं होगी। तेजाब की गंध नहीं होगी। बहुत कम ऐसे विमर्शकार और रचनाकार दिखते हैं जिनकी वाणी में सरस्वती उद्य नहीं दिखायी देती सबमें जूझने का माद्दा और ललकार व विरोध का भयानक रूप एक समान भाव से दिखायी देता है। कहना चाहूँगा कि यह सारी बातें कहीं से न तो असंभावित है और न ही अस्वीकार्य। यह उन रचनाकारों का हक बनता है कि वे अपने चारों ओर दिख रहे शोषण और अन्याय को अपनी रचना में स्थान दें। उसको केंद्र में रखकर उस पर कविता, कहानी, उपन्यास लिखे।

सौभाग्य से वे अपनी इस जिम्मेदारी का निर्वाह बड़ी ईमानदारी और जिंदादिली से कर रहे हैं। पर एक बात जो समझ में नहीं आती, वह यह कि उनकी पीड़ा उनका दर्द, उनके साथ हुए और हो रहे अन्याय को, शोषण को जब सवर्ण लेखक अपने साहित्य में स्थान देता है तो वह कैसे दलितों की दृष्टि में स्वयं अछूत मान लिया जाता है? आत्मानुभूति बनाम स्वानुभूति का यह दर्शन सचमुच समझ में नहीं आता। लगता है नासमझी का परिचय दिया जा रहा है। क्या सवर्ण लेखक उस दुख, पीड़ा, यातना का चित्रण इसलिए नहीं कर सकता कि वह उस जुल्म का शिकार नहीं हुआ होता। अरे भाई वह देख तो रहा है। अनुभव तो कर ही रहा है। ऊपर से मन–मस्तिष्क भी शोषितों के साथ है। तो क्या वह अपने रचना–संसार में उसको पचा नहीं सकता? क्या प्रेमवन्द का विरोध और तमाम सवर्ण लेखकों का विरोध इसलिए करना आवश्यक है कि उनके

जनक उच्च जाति में पैदा हुए थे। जब मैं यह पंक्ति लिख रहा हूँ तो मुझे नागार्जुन का बलचनमा याद आ रहा है। बलचनमा' के साथ ठाकुर ठकुराइन का जैसा व्यवहार था, वोली–भाषा और घृणा थी, क्या उसका उद्घाटन करने में नागार्जुन से कोई चूक हुई है? यदि नहीं तो फिर सवर्ण–रचनाकार क्यों नहीं शोषित–दलित के साथ खड़ा हो सकता? दलित लेखकों को इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि वे अपनी सोच और कान खुले रखें। सहज और अकुंठ भाव से विना हिचकिचाहट के उन्हें स्वीकार करना चाहिए कि परदुखकारता भी एक तरह का निजी अनुभव ही होता है। यदि वह ईमानदारी से व्यक्त किया जा रहा हो तो उसमें ओर अधिक संभावनाओं का ही है।

इस दृष्टि से विचार करने पर हिन्दी के मध्यकालीन संतों का योगदान दलित साहित्य के विकास में आज से ज्यादा सार्थक रहा है। शायद ही किसी देश का ऐसा साहित्य होगा जो अतीत में भी प्रासंगिक रहा हो और वर्तमान में भी। सच कहा जाये तो दलित साहित्य अपनी प्रेरणा का 'प्राणतत्त्व' यहीं से खींचता है। यहीं से प्रभावित होकर अपनी लेखनी को बल प्रदान करता है। दलित विमर्श सचमुच सन्त काव्य परम्परा की देन है। इसने वह दृष्टि हमें दी जो आज भी थाती के रूप में हमारे सोचने–समझने का नजरिया बदल देती है। तो क्या वह ऐसा इसलिए करते हैं कि उनका जन्म और पालन पोषण दलित परिवार में हुआ था। यदि सचमुच यही सच है तो फिर यह भी सवाल उठता है कि कवीर, रैदास, सेन और नाई यदि दलित्तेर समाज में पैदा हुए होते तो वैसा कदापि नहीं लिख पाते, जैसा कि उन्होंने लिखा है। कहना चाहूंगा कि साहित्य का मूल्यांकन इस तरह के जातिवादी नजरिए से नहीं किया जाना चाहिए और न ही इसको बढ़ावा देना चाहिए। साहित्य का दृष्टिकोण व्यापक और निरपेक्ष जनित भावों के योग से रचा जाना चाहिए। बुद्ध से लेकर निर्गुण संत और अम्बेडकर की परम्परा में शोषण के प्रतिकार और विरोध 1 के साथ–साथ एक साथ चलने का भाव भी दिखाई देता है जो सामाजिक और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से आवश्यक है। संतों के विचारों ने श्दलित साहित्यश को एक नयी दिशा एक नयी चेतना दी है। जिसकी व्याख्या जाति के नजरिए से करना उचित नहीं लगता। अब आइए। दलित लेखक वाल्मीकि के उस अवदान की बात करें जिसके लिए वे साहित्य जगत् में जाने जाते हैं। हिंदी दलित साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इनके रचना–कर्म यानि साहित्य ने भारतीय समाज के उस यथार्थ को समझने की प्रेरणा दी जो सदियों से शोषण का कारण रहा है। उन्होंने दलितों की उस पीड़ा से पाठकों को रू–ब–रू कराया है जो सौंदर्य और कृत्रिम आदर्शों के नाम पर अभी तक साहित्य से पूर्णतः नदारद था।

शोध पूर्व साहित्यक अवलोकन

शर्मा, डॉ. रामविलास (2013) का विचार है साहित्य सृजन का स्त्रोत एक ठोस यथार्थ का धरातल है, जिसमें सामाजिक सरोकारों से युक्त ठोस विषय–वस्तुओं का समावेश आवश्यक है। उन्होंने लिखा है ''कला का रूप हवा में नहीं निखरता।

हंस डॉ. कृष्णलाल (2013) के विचार है ''साहित्य का मूल स्त्रोत जीवन है, उसमें कवि हृदय की व्यक्तिगत भावना की प्रधानता नहीं होती, काव्य की भावधारा का केन्द्र स्वय कवि नहीं पर जनता होती है, जनता की भावधारा होती है।

नायर, डॉ. तुषार (2015) दलित साहित्य दलित होने के अनुभवों ने उन्हें अपनी अमानवीय स्थिति का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रेरित किया है, जो कि भारत की कुख्यात जाति व्यवस्था द्वारा और भी बदतर हो गई है, जो सदियों से मौजूद है। वाल्मीकि जी' का साहित्य इस बात का परिचय कराने में समर्थ रहा है कि भारतीय समाज के जीवन में जन्मना वर्ण व्यवस्था की अवधारणा ने कितना बड़ा अत्याचार किया है। ऊँच–नीच और बड़े छोटे के भेदभाव ने दलितों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक जीवन के विकास पर बहुत ही नकारात्मक प्रभाव डाला है। इसलिए उनका साहित्य आज श्दलित अस्मिता की खोजश का प्रतीक बन चुका है। सो वह खोज, वह रोग, वह व्याधि अन्ततः चींख और पुकार के रूप में व्यक्त होने के साथ–साथ अस्वीकार की सीमा तक है।

शोध के उद्देश्य इस भोाध पत्र को पूरा करने के लिये भोाधार्थी द्वारा निम्नलिखित भोाध उद्रदे यों का निर्माण किया गया है। वे इस प्रकार है।

3 ओमप्रका**श** वाल्मीकि के साहित्य में कहानी लेखन का अध्ययन करना ।
4 ओमप्रका**श** वाल्मीकि के साहित्य में महाजनी संस्कृति का अध्ययन करना ।
5 ओमप्रका**श** वाल्मीकि के साहित्य में मानवीय संवेदना का अध्ययन करना ।

भोाध प्रश्न इस भोाध पत्र को पूरा करने के निम्नलिखित भोाध प्रशन का निमार्ण भोाधार्थी द्वारा किया गया है। जो इस प्रकार है।

3 ओमप्रका**श** वाल्मीकि के साहित्य में मानवतावाद को ज्ञात करना ।

4 ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में मुक्ति पथ को ज्ञात करना

5 ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में जीवन सधर्श को ज्ञात करना ।

शोध विधि : इस शोध पत्र को पूरा करने के लिये मैं निम्न शोध विधियों का प्रयोग इस शोध पत्र में किया है, क्योकि भारतीय साहित्य में बन्द प्रकार के आँकड़े ही होते है जैसे अतीत की घटना को आज शोधार्थी ने न तो देखा है और ना वह उस समय घटना उसके सामने हुई है, घटना का जो उल्लेख तात्कालीन हिन्दी के साहित्यकारो ने किया है उसी से आज सत्य को सावधानीपूर्ण खोजना भी है। इसीलिये मेरे इस शोध पत्र में मेरे द्वारा वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध समस्याऐं, उच्चतम उद्देश्य का दलितों लिखना है नहीं सुंदरता का शिल्प, लेकिन अनुभव की प्रामाणिकता. दलित लेखकों ने हमें उत्पीड़न की प्रकृति बताई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी कहानी भारत के आधे हिस्से की आवाज है जो अनगिनत पीढ़ियों से ध्वनिहीन है, मसलन जब स्वयं वाल्मीकि जी ष्मुख्यधारा और दलित साहित्य पुस्तक में मेरे लिखने का कारणष को समझाते हुए लिखते हैं हजारों साल की घुटन, अंधेरे में गूँजती चीत्कारों और भीषण यातनाओं से युक्त होकर जब कोई खुली हवा में साँस लेने की कोशिश करता है तो उसके सामने सिर्फ चमत्कृत कर देने वाली रोशनी की चकाचौंध ही नहीं होती, उसकी अपनी अस्मिता का सवाल और पहचान भी उतनी ही तीव्र होती है। अज्ञानता और उत्पीड़न की परतों को तोड़कर जब पुस्तकों में छपे शब्दों से साक्षात्कार हुआ, तो मेरे जैसे अनेक दलित लेखकों की अपनी–अपनी अभिव्यक्ति फूटकर बाहर आई। मूक वेदनाएँ तड़प उठीं और आक्रोशित चेतना साहित्य की एक ऐसी धारा के रूप में प्रवाहित हुई जिसमें मुक्ति–संघर्ष की अनुभूतियों का प्रचंड, दग्ध आवेग तो है ही, संवेदनाओं का महीन कसाव भी है, जो कलास्वादों और प्रतिमानों के पारंपरिक स्वरूप से भिन्न है। यहाँ तक तो बात समझ में आ रही है। लेकिन जब वे लिखते हैं कि दलित्तेर साहिय सिर्फ कल्पना पर आधारित होता है। तब वह रचना–कर्म के साथ अन्याय भी करते हैं। मसलन जब वे लिखते हैं कल्पना के आधार पर सृजित गंभीर चिंतन से पूरित रचनाएँ दलित पीड़ा को कभी उद्वेलित नहीं कर पाई।

विशय का महत्व, हिंदी के सुप्रतिष्ठित विद्वान डॉ. रामविलास शर्मा के दार्शनिक, सामाजिक, साहित्यिक, आलोचनात्मक आयाम, श्जातिश संबंधी उनकी स्थापनाएँ, मान्यताएँ कभी उन्हें अभिभूत नहीं कर पाए। दूसरी ओर राहुल सांकृत्यायन का लेखन आंदोलित करता रहा है। मानव विकास की सतत प्रक्रिया और अतीत से वर्तमान को जोड़कर देखने का विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण एवं साहित्य की समाजशास्त्रय व्याख्या से विहीन हिंदी साहित्य दलितों की चीखों से अनभिज्ञ ही रहा है। इन स्थितियों में मेरे लिखने का कारण कहीं न कहीं इन वेदनाओं से स्वतः ही जुड़ जाता है। जाहिर है वाल्मीकि जी का यह विचार इसी तथ्य की ओर इशारा करता है कि जो भोक्ता है वही पीड़ा का मर्म समझोगा। यानी जो दलित होगा वही दलित संवेदना को पकड़ेगा। सच कहिए तो यह दृष्टिकोण मुझे सही और तर्कसंगत नहीं लगता । क्योंकि इस भावना से रचित साहित्य में अपनी वैयक्तिक पीड़ा इतनी अधिक प्रभावी और घनीभूत हो जायेगी कि उसमें दूसरे का अनुभव दूसरे का दुख–दर्द सुनने का अवसर लुप्त हो जायेगा। या फिर उपेक्षित हो जायेगा। यह सच है कि वाल्मीकि जी का साहित्य जमीनी यथार्थ के साथ–साथ जमीन में दफ्न इंसानियत के बुनियादी सवालों से टकराता है। दलितों की जिज्ञासओं, आशाओं तथा न्याय की लड़ाई को आवाज देता है। हम इंसान को हाशिए पर धकेल सकते हैं, उसके दर्द की अनुभूति की उपेक्षा कर सकते हैं। किन्तु उसकी भावनाओं को हमेशा–हमेशा के लिए नहीं दबा सकते। उसमें पल रही पीड़ा और जुझारूता के स्वर को शिथिल नहीं कर सकते। क्योंकि व्यक्ति न सही उसकी भावनाएँ तो समाज में यत्र–तत्र गूँज बनकर टकराती ही रहती हैं। इस क्रम में एक बार फिर वाल्मीकी जी के विचारों को देख सकते हैं। शब्दों में ष्क्या इतना काफी नहीं है कि लिखने के लिए इस छोटी सी संघर्ष–यात्रा में न जाने कितने दंश हैं जो फाँस की तरह गड़े हैं।

जो कविता–कहानियों में व्यक्त होते हैं। मेरी आँखों के सामने वे दीन–हीन, भूखे–नंगे, गंदे नालों पर दड़बेनुमा घरों में कीड़े–मकोड़ों की तरह बिलबिलाते, मैला ढोते, खेतों में खटते लोग हैं जो मात्र आर्थिक दबावों में ही नहीं सामाजिक उत्पीड़न और भेदभाव में जीने के लिए भी बाध्य हैं। ये आदमी की तरह जीना चाहते हैं, और मेरे लिखने का कारण बनते हैं।' वाल्मीकि जी का यह कथन किसी भी रूप में असत्य तो नहीं माना जा सकता। पर यह काम केवल दलित लेखक ही कर सकते हैं यह बात झूठी लगती है। उनका जीवनानुभव उनके साहित्य में प्रखर रूप में व्यक्त हुआ है। वे दलितों की समस्या में डूबकर उसके निदान खोजने की कोशिश करते हैं। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य भारतीय समाज के विकास व राष्ट्र के नवनिर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का द्योतक बनकर करोड़ों–करोड़ों लोगों के मार्ग का सम्बल बनता है।

आज भारतीय समाज ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अप्रतीम प्रगति की है। दुनिया के किसी भी देश से हम कम नहीं है लेकिन इसके साथ ही यह भी सत्य है कि यहाँ आए दिन जाति और धर्म के नाम पर जो झगड़ें होते हैं, वैसे कही और नहीं। इन झगड़ों में सबसे ज्यादा नुकसान होता है दलितों को। अभी हाल ही में दिल्ली–हरियाणा में एक जाति विशेष ने आरक्षण की माँग करते हुए जो माहौल निर्मित किया उसने देश–समाज की रक्त–शिराओं को एक तरह से बाधित किया। इसके साथ दलितों–पिछड़ों की जो छोटी–मोटी दुकानें रोड़ के किनारे थी उन्हें दंगाइयों ने लूट लिया– जला दिया। एक तरह से गदर की स्थिति बन गई थी। इस क्रम में हरियाणा का महम कांड, मिर्चपुर कांड, सनपेड़ा गाँव (बल्लभगढ़ के पास) में दलित परिवार को जिंदा जलाने की साजिश, जिसमें दो मासूम बच्चे जलकर मर गए, गोहाना कांड (दस वर्ष पूर्व) की याद ताजा करा गया। खैर! आज के भारतीय समाज में दलितों के प्रति होने वाले उत्पीड़न के प्रसंगों में कोई कमी नहीं हुई है। के महत्त्व और असमानता के दुष्परिणामों की ओर संकेत करते हुए लिखा था असमानता क्रांति का मौलिक कारण है और क्रांति की ज्वाला सम्पूर्ण समाज को भस्मात् कर देती है। अतः समाज में विकास, समृद्धि एवं अमन–चौन के लिए समानता का होना बहुत जरूरी है। साहित्य अपने समय व समाज का ऐतिहासिक दस्तावेज होता है। इस ऐतिहासिक दस्तावेज से हम समाज के संस्कार–परिष्कार के लिए उचित दिशा–निर्देश ले सकते हैं। इस दृष्टि से समसामायिक दलित साहित्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यह साहित्य ऑक्टावियो पॉज के इस मत के अनुसार एकदम ठीक ठहरता है। प्रत्येक कविता अपने लाभ के लिए कविता और इतिहास के सामंजस्य का प्रयास है।

निश्कर्श, भारतीय समाज जाति–व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था पर आधारित है। भारतीय समाज के कुछ चिंतकों ने इसकी खूब प्रशंसा की और इसे आदर्श समाज के लिए एकदम ठीक बताया। लेकिन वर्ण–व्यवस्था के चलते समाज में शूद्र वर्ण और वर्ण बाह्य समाज के बहुसंख्यक वर्ग का जीवन बड़ा ही कष्टमय, असहनीय और नारकीय हो गया। इसके कारण वैदिक काल में ही वेद विरोधी स्वर सुनाई पड़ते हैं। वर्ण–व्यवस्थावादी एक ओर तो 'न नग्नो, न रूग्णो, न दीनश्च तस्मात्', 'आत्मवत् सर्वभूतेषु', 'वसुधैवकुटुम्बकम', 'धर्मः रक्षति रक्षितः' 'सत्यंवद, धर्म चरः स्वाध्यायान्माप्रमदः', के साथ विश्व बंधुत्व की घोषणा करते रहे और दूसरी ओर शूद्र या दलित और स्त्री वर्ग पर धर्मशास्त्रों और किवंदतियों के सहारे नियंत्रण करते रहे।'दलित' शब्द जाति–बोधक से अधिक समूह बोधक है। सामान्य अर्थों में देखा जाए तो दलित वह है जो भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्य माना गया, दुर्गम पहाड़ियों, जंगलों में जीवनयापन करने को बाध्य जनजातियाँ, बेगार करते, कम मूल्य पर श्रम करते श्रमिक, जरायमपेशा कही जाने वाली जातियाँ, बंधुआ मजदूर, वर्ण–व्यवस्था का अंत्यज, जिसका आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक शोषण हुआ है, जो जन्मना अछूत है वही दलित की परिधि में आता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1] जूठन, पहला खंड, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, छठी आवृत्ति उ 2014,
[2] जूठन, दूसरा खंड, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण रू 2015,
[3] साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.–1967,
[4] दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यचार्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण, स.–2013, 79
[5] भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य, पुन्नीसिंह–कमला प्रसाद–राजेंद्र शमां, वाणी प्रकाशन, .2003,
[6] दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं वचार्थ, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण, सं.–2013,
[7] जूठन, पहला खंड, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, छठी आवृत्ति 2014